अनुवाद

इस बद्ध जगत् में यह जीव मेरा ही शाश्वत् भिन्न-अंश है। बद्धदशा में होने के कारण यह मन और पाँच इन्द्रियों के साथ घोर संघर्ष कर रहा है।।७।।

तात्पर्य

यहाँ जीव का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है—जीव श्रीभगवान् का शाश्वत् भिन्न-अंश है। ऐसा नहीं कि वह बद्धदशा में जीवस्वरूप को धारण कर लेता है और मुक्त हो जाने पर परमेश्वर से एक हो जाता है। वह नित्य भिन्न-अश है; **सनातन** विशेषण के प्रयोग से यह निश्चित रूप से सिद्ध होता है। वैदिक मन्तव्य के अनुसार, श्रीभगवान् असंख्य रूपों में अपना विस्तार और प्रकाश करते हैं, जिनमें से स्वांश नामक प्रधान रूपों को विष्णुतत्त्व कहते हैं और गौण भिन्न-अंशों को जीवतत्त्व कहते हैं। भगवान् राम, नृसिंहदेव, विष्णुमूर्ति और वैकुण्ठ लोकों के अधीश्वर श्रीकृष्ण के स्वांश-प्रकाश हैं तथा जीव उनके भिन्न-अंश हैं, अर्थात् नित्यदास हैं। श्रीभगवान् के स्वांश-प्रकाश सनातन हैं और उसी प्रकार भिन्न-अंश जीवों का अपना सनातन स्वरूप है। श्रीभगवान् के भिन्न-अंश होने के कारण जीवों में उनके आंशिक गुण भी हैं, जिनमें से एक गुण स्वतन्त्रता है। प्राणीमात्र एक जीवात्मा है; उसका निजी स्वरूप है और उसे अल्पमात्र स्वतन्त्रता भी मिली है। इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करने से वह बंधन में पड़ जाता है और इसी के सदुपयोग से शाश्वत् मुक्ति-लाभ कर सकता है। दोनों ही अवस्थाओं में वह श्रीभगवान् के समान नित्य है। मुक्तावस्था में वह इस बद्धदशा से छूट जाता है और भगवत्सेवा में संलग्न रहता है, जबकि बद्धदशा में त्रिगुणमयी माया के वशीभूत होकर भगवद्भक्तियोग को भूल बैठता है। इस विस्मृतिवश ही प्राकृत-जगत् में जीवित रहने के लिए भीषण संघर्ष करने को वह बाध्य हो जाता है।

मनुष्य, पशु, आदि जीव ही नहीं अपितु ब्रह्मा, शिव और विष्णु जैसे प्राकृत-जगत् के सब महासंचालक भी भगवान् श्रीकृष्ण के अंश हैं। वे सभी सनातन हैं, उनकी अभिव्यक्ति नित्य है। **कर्षति** शब्द सारपूर्ण है। बद्धजीव प्राकृत-जगत् में मानो लोह-पाश में बँधा हुआ है। मिथ्या अहंकार उसका बंधन है और मन इस भवबंधन की ओर ले जाने वाली मुख्य इन्द्रिय है। जब मन सत्त्वगुण में रहता है तो कर्म सुखदायक होते हैं; जब उस में रजोगुण बढ़ जाता है, तो अपने कर्मों से दुःख की प्राप्ति होती है तथा तमोगुण छा जाने पर अधम योनियों में दुर्गति होती है। इस श्लोक से स्पष्ट है कि बद्धजीव मन और इन्द्रियों वाले प्राकृत शरीर के आवरण में है। मुक्ति होने पर यह प्राकृत आवरण नष्ट हो जाता है, परन्तु उसका दिव्य वपु—जीवस्वरूप बना रहता है। माध्यन्दिनायन श्रुति के अनुसार, **स वा एष ब्रह्मनिष्ठ इदं शरीरं मर्त्यमतिसृज्य‌ब्रह्माभिसंपद्य ब्रह्मणा पश्यति ब्रह्मणा शृणोति ब्रह्मणैवेदं सर्वमनुभवति।** अर्थात् इस प्राकृत बन्धन से छूट कर जब जीव वैकुण्ठ-जगत् में प्रवेश करता है, उस समय वह अपने अप्राकृत वपु को फिर प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार